THE TIMES OF INDIA

Date: 03-08-26

Foreign Campuses Can't Fix Structural Gaps In Indian Education

Without guidelines on teacher-training, research incentives & investment in domestic institutions, getting global varsities here will have little impact. We will be importing brands that will remain out of reach of many

Swarnodeep Homroy, [Professor of Finance Univ of Groningen Netherlands]

Over a dozen foreign universities are now racing to plant their flags in India, enabled by National Education Policy (NEP), which allows foreign universities to compete with Indian universities at home. India has flirted with this idea before.

In 2010, UPA govt introduced Foreign Educational Institutions Bill, which aimed to regulate and permit foreign universities to operate independently. This bill was blocked, largely due to political opposition, and fears of commercialisation. In the following decade, a patchwork of "twinning" and joint-degree programmes emerged, many lacking transparency or rigour. The 2020 NEP revived the idea, but with bolder intent. And the 2023 UGC guidelines finally made it executable.

The regulatory scaffolding now seems firmer than during the last decade, when University of Lancaster and University of Wales offered joint degrees that were not accredited by UGC. This time, UGC has rolled out structured guidelines for Foreign Higher Educational Institutions (FHEIs), which make only the world's Top 500 universities eligible. They can set their own fees and admission criteria, and are subject to only the basic academic and financial disclosures to UGC.

However, the significance of this change in India's higher education landscape cannot be judged solely by regulatory preparedness or institutional prestige. There are deeper issues to consider. What role can foreign universities play in Indian higher education? Can they strengthen the sector as a whole and increase the global competitiveness of domestic institutions?

Current policy rationale is simple: competition will increase the average quality of Indian higher education institutions. Foreign universities will offer world-class options at home, create pressure for improvement among domestic peers, and stem the outflow of 1.3mn Indian students to overseas campuses, who spend around $40bn abroad annually.

Yet, it is simplistic to believe that India's underwhelming global rankings are due to insufficient competition. State universities, which educate the majority of students, continue to suffer from underfunding, bloated bureaucracies, outdated syllabi, and vacant teaching positions. Over 30% of faculty roles in public universities remain unfilled. Research-led teaching is the exception, not the rule. Low pay, limited autonomy, and excessive interference discourage talented researchers from pursuing academic careers in India.

At the same time, while foreign university campuses will be cheaper than studying abroad, it will also be a very different experience. It is quite likely that Indian branches of foreign universities will not replicate the full intellectual infra (state-of-the-art labs, globally eminent researchers delivering courses, multinational classrooms) that defines their home campuses. Certainly not in the short term.

Moreover, these will still be premium providers of higher education and beyond the reach of even middle-class families in lower-income states. Without substantial scholarship support or regulatory guidance, these campuses will serve primarily urban, affluent students, who might still prefer the immersive experience of studying abroad.

Perhaps the most worrying aspect of this policy shift is its spatial dimension. Of the 15 foreign universities currently in line to open campuses, nearly all are concentrated in Delhi-NCR, Mumbai/Navi Mumbai, or Bengaluru. A few months ago, Vidarbha activists voiced their frustration to this newspaper, pointing out that Maharashtra had promoted only Mumbai-based sites for international campuses, ignoring large educational hubs like Nagpur and Amravati.

To put this spatial skew in perspective, the state's college density is less than half that in Karnataka or Kerala. In Bihar, a college professor has three times as many students in class as counterparts in Maharashtra or Karnataka. A real concern is that the foreign university drive will deepen these imbalances, reinforcing a geography of exclusion.

Contrast this to foreign universities operating in China. The likes of NYU Shanghai, Duke Kunshan, and the University of Nottingham Ningbo have come up since early 2000s. These campuses were embedded in national policy goals: talent retention, research collaboration, and regional capacity building.

Importantly, China placed these campuses strategically in second-tier cities like Kunshan and Ningbo, places with high development potential but low visibility. This helped decentralise education investment and integrate foreign collaboration into regional growth strategies.

India's current policy framework lacks that strategic breadth. There is no national roadmap linking foreign university presence to regional planning, research clusters, or industrial corridors. There are precious few guidelines for these campuses to engage deeply with local universities or help build teaching capacity.

Foreign universities should be welcome, but there is a case for joined-up thinking. Foreign universities can bring significant value through pedagogy, brand power, and international exposure. But they cannot resolve the deeper structural deficits of Indian higher education. China used foreign education not just to import brand names, but to strengthen its domestic system and reduce regional inequality.

Without concerted efforts and policy guidelines on teacher-training, research incentives, and investment in domestic institutions, we will not be able to tap into the transformative potential of this initiative. Foreign universities should be a means towards the long-standing promise of equitable, globally competitive education at home.

दैनिक जागरण

Date: 03-08-26

नशा मुक्त भारत

संपादकीय

ने नशे की लत की समस्या से निपटने के लिए 'विकसित भारत के लिए नशा मुक्त युवा संकल्प अभियान' की जो शुरुआत की, वह समय की मांग है। इस अभियान को देश भर में जनभागीदारी आंदोलन के रूप में शुरू किया गया है। इसका उद्देश्य देश के युवाओं को नशे की लत के खिलाफ एक साथ मिलकर प्रयत्न करने के लिए एकजुट करना है। इस अभियान का उद्देश्य केवल युवाओं को नशा मुक्त भारत के अभियान में योगदान के लिए प्रोत्साहित करना ही नहीं, बल्कि विकसित भारत के लक्ष्य को समर्थन देना भी है। निश्चित रूप से यह एक महत्वाकांक्षी अभियान है। जब देश विकसित भारत के सपने को साकार करने की ओर आगे बढ़ रहा है, तब यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि देश के युवा मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ रहें और किसी भी तरह के नशे के शिकार न होने पाएं। इस अभियान को वास्तव में जन आंदोलन बनाने के लिए सरकार को बहुत कुछ करना होगा, क्योंकि आम तौर पर यह देखा जाता है कि सरकारी आयोजनों एवं अभियानों में स्वेच्छा से जनभागीदारी नहीं हो पाती। एक समस्या यह भी है कि आमतौर पर ऐसे अभियानों से अन्य राजनीतिक दल और विशेष रूप से विरोधी राजनीतिक दल जुड़ना पसंद नहीं करते। सरकार को यह देखना चाहिए कि इस अभियान में सभी राजनीतिक दलों का सहयोग कैसे प्राप्त हो?

इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि युवाओं में नशे की बढ़ती लत किसी एक राज्य या क्षेत्र विशेष की समस्या नहीं है। यह एक तरह से पूरे देश की समस्या है, लेकिन इसी के साथ तथ्य यह भी है कि कुछ सीमावर्ती राज्य इस समस्या से कहीं अधिक ग्रस्त हैं। उदाहरणस्वरूप पंजाब एक अर्से से नशे की समस्या से गंभीर रूप से ग्रस्त है। एक के बाद एक राज्य सरकारों ने पंजाब को नशा मुक्त करने के लिए अभियान छेड़ा, लेकिन उन्हें वांछित सफलता नहीं मिल सकी। पंजाब जैसी स्थिति पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों की भी है। इसका कारण यह है कि जहां पंजाब में पाकिस्तान मादक पदार्थ भेजने में लगा हुआ है, वहीं पूर्वोत्तर में यह काम म्यांमार से हो रहा है। यह एक चिंताजनक तथ्य है कि पिछले कुछ वर्षों में सीमा पार से नशे की आवक बढ़ी है। इसके अतिरिक्त देश में भी चोरी-छिपे मादक पदार्थ बनाने वालों की संख्या बढ़ती हुई दिख रही है। युवाओं को नशे से बचाने के लिए केंद्र सरकार के साथ-साथ राज्य सरकारों और सामाजिक-सांस्कृतिक संगठनों को तो सक्रिय होना ही होगा, समाज को भी इस खतरे से सावधान रहना होगा। घर-परिवार और शिक्षा संस्थानों की ओर से छात्रों को इसके लिए सतत रूप से चेताया जाना चाहिए कि नशे की लत किस तरह युवाओं के भविष्य को बर्बाद कर देती है। हर स्तर पर सक्रियता और जागरूकता से ही नशे की समस्या से निपटा जा सकता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 03-08-26

जेनज़ी ने उजागर की खामी क्या लाभ ले पाएगा विपक्ष?

शेखर गुप्ता

आप अपने राजनीतिक रुझान के अनुसार जंतर को एक क्रांति के रुप में अथवा एक गुजरे हुए तूफान के रूप में देख सकते हैं। मेरे तर्कों से किसी की सोच नहीं बदलने वाली । बहरहाल, क्या मैं यह कहने का प्रयास करूं कि क्या हुआ और क्या नहीं ? जो कुछ हुआ वह मोदी सरकार प्रति पहला सार्वजनिक और खुल्लम खुल्ला विरोध और उपहास है। अगर उन्होंने 20 जुलाई की हिंसा के बाद इतनी तत्परता से प्रतिक्रिया दी तो उसका मुख्य कारण यह था कि उन्हें एहसास हुआ कि विरोध कर रहे युवाओं (या अधिकतर बच्चों में से 95 फीसदी से भी अधिक मध्यम और उच्च मध्यम वर्ग के हिंदू हैं। यह उनका बुनियादी वोट आधार है। आप इसे जेनजी का लेबल देकर तुच्छ बना सकते हैं और पूरी चर्चा खासतौर पर टीवी पर होने वाली चर्चा को उनकी भाषा, उनके द्वारा दी गई गालियों पर मोड़ सकते हैं। लेकिन यह जेनजी कितना अलग तरह से सोचती है इस पर कोई भी चर्चा उनके द्वारा दिखाई गई अवज्ञा को तुच्छ नहीं बना सकेगी।

पहली बात तो यह कि ये अवज्ञा उस शारीरिक जोखिम के बावजूद थी जो 20 जुलाई को हुई पिटाई के बाद भी उनके जंतर मंतर लौटने के संकल्प से स्पष्ट है। दूसरी बात उनमें भविष्य के करियर को लेकर कोई भय नहीं नजर आया या कहें तो एक हद तक लापरवाही नजर आई। यह देश की राजधानी में हुआ अब तक का सबसे उग्र छात्र आंदोलन था। इससे पहले विश्वनाथ प्रताप सिंह के कार्यकाल में मंडल विरोधी आंदोलन हुआ था। उसमें उस दौर के युवाओं ने विरोध किया था। इससे उस समय राजीव गोस्वामी और सुरिंदर सिंह चौहान की मृत्यु हुई थी।

दोनों ही मामलों में प्रेरणा एक जैसी थी- करियर से जुड़ी संभावनाएं, नौकरियां और शिक्षा । इनमें पहला आंदोलन स्पष्ट रूप से ऊंची जाति के लोगों का था जबकि इस बार अधिकांश अंग्रेजी बोलने वाले, मीम बनाने वाले उच्च मध्य वर्ग के युवा हैं। चार दशक के अंतराल पर आंदोलनरत हुई दो पीढ़ी लेकिन पुलिस या दमन का कोई भय नजर नहीं आया।

इन युवाओं ने अभिजात वर्ग के बीच खुद अपना लिए गए मौन को तोड़ दिया। यह वर्ग मोदी की आलोचना में एक भी शब्द नहीं बोल रहा था। बहुत हुआ तो दाएं-बाएं देखकर थोड़ा फुसफुसा लिया जाता था। अब यह सिलसिला रुकने वाला नहीं है। उन्होंने यह भी दिखाया कि एक बड़ा जनसमूह ऐसा है जो विकसित भारत या अमृतकाल जैसे नारों से अप्रभावित है।

आज के जेनजी का बड़ा हिस्सा 2047 तक 50 वर्ष की आयु का होगा और सबसे छोटी आयु वाले 35 वर्ष के होंगे। उनकी जिंदगियां तब तक निकल चुकी होंगी। इतना लंबा इंतजार करने का धीरज किसके पास है? निश्चित रूप से इस पीढ़ी के भारतीय युवाओं के पास नहीं और कहीं के भी युवाओं के पास नहीं। इसके विपरीत यह 50 वर्ष से अधिक आयु वाला मध्यम या साथ यह तरीका काम कर सकता है। लक्ष्य बहुत दूर भविष्य का रखा गया है जहां बुजुर्ग उसे देख नहीं पाएंगे। इसलिए मोदी सरकार सुरक्षित है। बच्चे इतनी दूर देख नहीं सकते। मोदी की आलोचना करने वाले कई लोग इसे श्रीलंका, बांग्लादेश

या काठमांडू में हुए युवाओं के आंदोलन से जोड़कर देख रहे थे। ऐसा सोचना भारतीय लोकतंत्र हमारी मजबूत व्यवस्था दोनों का अपमान है। साथ ही यह एक भ्रम को भी दर्शाता है जिसके तहत यह सोचा जा सका कि एक निर्वाचित सरकार को इस कदर आसानी से हटाया जा सकता है। युवाओं ने मोदी विरोधियों के लिए दरवाजा जरूर थोड़ा सा खोल दिया है। उन्होंने मोदी सरकार की कमी उजागर कर दी है। वह यह कि मोदी सरकार के मन में अपने सबसे वफादार जनाधार के बीच अपनी लोकप्रियता को लेकर जो धारणा है वह हकीकत से काफी दूर है। उस जनाधार में सरकार से निराश लोगों की तादाद बढ़ रही है ।

इस पर मुझे 2018 में छत्तीसगढ़ चुनावों के दौरान वहां के एक गांव में हुई बातचीत याद आती है जहां मेरे साथ प्रणय रॉय के अलावा दोराब सोपरीवाला भी थे। हमने एक ग्रामीण से पूछा था कि जब रमन सिंह की भाजपा सरकार उन्हें उतना कुछ दे ही रही है तो वे बदलाव क्यों चाहते हैं? इस पर उस ग्रामीण ने जवाब दिया, 'अब काफी समय हो गया उन्हें क्या आप रोज-रोज एक ही सब्जी खाते हुए बोर नहीं हो जाते। भले ही वह आपकी पसंदीदा सब्जी हो !' सबक यह है कि थकान और ऊब कुछ पुराने वफादार मतदाताओं को भी प्रभावित कर सकती है ।

यही बात इन प्रदर्शनों ने रेखांकित की। भाजपा ने इसे समझा, तभी उन्होंने अपने दो सबसे महत्त्वपूर्ण चेहरों को भेजा । स्वास्थ्य मंत्री और छह साल तक पार्टी अध्यक्ष रहे जेपी नड्डा तथा प्रधानमंत्री कार्यालय में राज्य मंत्री जितेंद्र सिंह, जो अंतरिक्ष, परमाणु ऊर्जा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसी संवेदनशील मंत्रालयों के प्रभारी है । यही कारण था कि उनका निर्देश था कि प्रदर्शनकारियों के साथ नरमी बरती जाए, उनकी सभी मांगें मान ली जाएं और यहां तक कि साझा संवाददाता सम्मेलन भी किया जाए।

भूमि अधिग्रहण और कृषि कानूनों पर मोदी सरकार ने पहले लचीलापन दिखाया था। अब हमने कमजोरी देखी। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रदर्शन करने वाले उनके मतदाता आधार से थे। और यह भी तथ्य है कि उनका आधार इससे कहीं व्यापक है।

यह बात हमें इस बिंदु पर लाती है कि यह प्रदर्शन आखिर क्या नहीं था ? पहली बात, कोई क्रांति नहीं हुई और आप फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के गीत को विराम दे सकते हैं। कुछ ही दिनों में उत्तर भारत कांवड़ यात्राओं से पट जाएगा। जोर-जोर से डीजे बजेंगे और श्रद्धालुओं द्वारा लगाए गए भंडारों में भोजन होगा, उत्तर प्रदेश सरकार के हेलीकॉप्टर कांवड़ ले जाने वालों पर फूल बरसाएंगे। इनमें भी अधिकांश जेनजी होंगे। लब्बोलुआब यह कि भाजपा के वफादार युवाओं की भी कमी नहीं ।

आगे की राजनीति में जेनजी द्वारा दिखाई गई कमी का लाभ लेने की कोशिश होगी। भाजपा अपनी समस्या को समझ चुकी है। यही वजह है कि प्रधानमंत्री मोदी इंस्टाग्राम पर बात कर रहे हैं। लेकिन इससे मतदाताओं की ऊब कैसे दूर होगी? क्या वह अपनी सरकार को फिर से सशक्त कर पाएंगे ? मंत्रिमंडल में वही पुराने चेहरे हैं। युवाओं को सीधे प्रभावित करने वाले मंत्रालयों की बात करें तो शिक्षा मंत्रालय में अब पांचवे मंत्री के पास प्रभार है और जल्द ही छठा होगा। कौशल विकास में चार मंत्री आ चुके हैं और अगर यह परियोजना सफल होती तो बेरोजगारी या अधूरा रोजगार कम होता और वे चार मंत्री कौन रहे ? राजीव प्रताप रूडी, धर्मेंद्र प्रधान, महेंद्र नाथ पांडे, फिर प्रधान और अब राष्ट्रीय लोक दल के जयंत चौधरी । हरियाणा के राव इंद्रजित सिंह 2004 से एक बार (2009-14) के अंतराल को छोड़कर लगातार राज्य मंत्री रहे हैं। अब उनके पास सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन और योजना है। मोदी सरकार ने योजना आयोग को समाप्त कर दिया लेकिन

मंत्रालय अब भी मौजूद है। जीतन राम मांझी और एचडी कुमारस्वामी क्रमशः एमएसएमई (सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम) और भारी उद्योग संभालते हैं। दोनों रोजगार के लिए महत्त्वपूर्ण हैं ।

विपक्ष इन मौकों का लाभ लेना चाहता बस यह याद रखे कि सत्ता ऊपर से नहीं आती। मैं पहले भी कह चुका हूं कि भारत में कोई शक्तिशाली नेता किसी चुनौतीकर्ता से पराजित नहीं होता। वे खुद को हराते हैं। इंदिरा गांधी ने आपातकाल से ऐसा किया, राजीव गांधी ने शाह बानो से अयोध्या तक कई गलतियों से, वाजपेयी ने इंडिया शाइनिंग के नशे में समय से पहले चुनाव कराकर 2014 में नरेंद्र मोदी एक चुनौतीकर्ता के रूप में उभरे। तब तक मनमोहन सिंह की संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन चार साल से पंगु बनी हुई थी।

हर शक्तिशाली नेता को पराजित करने के लिए विपक्ष को किसी ऐसे व्यक्ति की मदद मिली जिसने जन आंदोलन खड़ा किया। जयप्रकाश नारायण ने इंदिरा गांधी के खिलाफ और वीपी सिंह ने राजीव गांधी के खिलाफ ऐसा किया। इन तीन उलटफेरों यानी इंदिरा, राजीव और संप्रग के मामलों में आरएसएस गहराई से शामिल था। कांग्रेस के पास ऐसी कोई वफादार जमीनी फौज नहीं है और यह उनके लिए एक बड़ी बाधा है ।

अब उनके पास इस नए अवसर पर काम करने के लिए तीन साल हैं। मोदी-शाह भाजपा के पास खुद को बदलने और पुनर्निर्माण करने के लिए भी यही समय है।

जनसत्ता

Date: 03-08-26

अधूरी शिक्षा

संपादकीय

शिक्षा किसी भी देश के आर्थिक और सामाजिक विकास का आधार स्तंभ होती है। यह भी जरूरी है कि शिक्षा में अमीर-गरीब, जाति, धर्म, क्षेत्र या लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए, ताकि सबको सामान अवसर मिल सके। यह सच है कि भारत के शिक्षित समाज में पिछले कुछ दशकों से महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, लेकिन चुनौतियां अभी बरकरार हैं। हाल ही में संसद में दी गई जानकारी के मुताबिक, वर्ष 2025-26 में देश भर में नौवीं और दसवीं कक्षा के स्तर पर लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर आठ फीसद रही, जो अन्य कक्षाओं के मुकाबले सबसे अधिक है। यह हाल तब है, जब सरकार की ओर से कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ और समग्र शिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम एवं योजनाएं शुरू की गई हैं। सवाल है कि जब सबको शिक्षा के समान और सुलभ अवसर मुहैया कराने की नीतियां लागू की जाती हैं, तो लक्ष्य को पूरा करने की प्रतिबद्धता बीच रास्ते में ही दम क्यों तोड़ देती है ?

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जब एक महिला शिक्षित होती है, तो इसका प्रकाश पूरे परिवार को आलोकित करता है। योग्यता की बात की जाए, तो देश में हर साल स्कूली बोर्ड परीक्षाओं में लड़कियां अव्वल रहती हैं। इसके बावजूद

अगर उन्हें किसी कारणवश माध्यमिक स्तर पर ही स्कूल छोड़ने को विवश होना पड़े, तो इसे व्यवस्था की नाकामी नहीं, तो और क्या कहा जाएगा। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, पिछले वर्ष लद्दाख में माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर सबसे अधिक 15.6 फीसद दर्ज की गई। इसके बाद असम और कर्नाटक का स्थान है, जहां यह दर 13.9 फीसद रही। इसके पीछे कई कारण बताए गए हैं, जिनमें लड़कियों का घरेलू कार्यों और आर्थिक मामलों में परिवार का सहयोग करने के लिए स्कूल छोड़ देना या फिर माता-पिता का उनकी आगे की शिक्षा को जरूरी न समझना भी शामिल है। अहम सवाल यही है कि क्या सरकार की ओर से इन कारणों को समझने और उनका समाधान करने का ईमानदारी से प्रयास किया जाएगा, ताकि कोई भी लड़की आर्थिक या पारिवारिक समस्याओं की वजह से शिक्षा से वंचित न रहे?

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 03-08-26

बेटियों का कमाल

संपादकीय

राष्ट्रमंडल खेलों में भारतीय खिलाड़ियों का प्रदर्शन हर्षित करने वाला तो है ही, यह भविष्य के लिए बहुत उम्मीदें भी देता है। पदक तालिका में चौथे स्थान पर भारत उस स्थिति में खड़ा है, जब भारतीय खिलाड़ियों के दबदबे वाले कई खेल इस बार के आयोजन में शामिल ही नहीं किए गए थे। बावजूद इसके भारतीय खिलाड़ियों ने ग्लासगो में तिरंगे को बार-बार शिखर पर पहुंचाया और 140 करोड़ से अधिक देशवासियों को गौरवान्वित किया। हमारे खिलाड़ियों ने मुक्केबाजी, भारोत्तोलन और जूडो में शानदार प्रदर्शन किया है, बल्कि पहली बार बॉक्सिंग में सात स्वर्ण पदक जीते हैं। सबसे अहम बात यह है कि बेटियों ने स्वर्ण पदकों की झड़ी लगा दी। मीरा बाई चानू से जो शुरुआत हुई, तो फिर इस कतार में शर्मिला, अस्मिता, प्रीति पवार, साक्षी चौधरी, प्रिया धंधास, अरुंधति चौधरी, जैस्मिन जैसे नाम जुड़ते चले गए। अब ये सिर्फ नाम नहीं हैं, देश की हजारों-लाखों बेटियों की प्रेरणा-स्रोत हैं। इनमें से एकाधिक लड़कियां तो बेहद साधारण पृष्ठभूमि से आई हैं। उनका सबसे ऊंचे पोडियम पर खड़ा होना खास गौरवशाली है। वे न सिर्फ अपने जैसी अनगिनत प्रतिभाओं को प्रेरित करेंगी, बल्कि हमारे खेल से जुड़े कर्ता-धर्ताओं को और उत्साहित करेंगी कि वे ग्रामीण क्षेत्रों पर भी ध्यान दें।

इसमें कोई दोराय नहीं कि बीते कुछ वर्षों में देश में खेल-संस्कृति का तेजी से विकास हुआ है। खासकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की निजी दिलचस्पी और 'खेलो इंडिया' जैसे कार्यक्रमों का इसमें अहम योगदान है। इस क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश भी बढ़ा है और बड़े पैमाने पर युवा अब इसे करियर के तौर पर अपनाने लगे हैं। हालांकि, इस संस्कृति के निर्माण में क्रिकेट का सबसे बड़ा योगदान है। आईपीएल की शुरुआत ने देश के छोटे-छोटे शहरों को कई सितारे दिए और उन पर पैसों की बरसात ने समाज की पूरी मनोदशा बदल दी। परिवार अवरोधक के बजाय सहायक की भूमिका में आने लगे। सबसे बड़ा

बदलाव तो लड़कियों के मामले में आया है। पहले बेटियों के लिए खेल-क्षेत्र में बहुत बाधाएं थीं, मगर अब वे भी सपने देख रही हैं और उनको साकार कर रही हैं। कॉमनवेल्थ गेम्स की पदक तालिका उनकी प्रतिभा और जिजीविषा की कहानी खुद कह रही है।

इस बड़े बदलाव का एक पहलू यह भी है कि अब भी हिंदी हृदयस्थल के सूबों से एथलेटिक्स में उतने खिलाड़ी उभरकर सामने नहीं आ रहे, जितने हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, केरल, महाराष्ट्र, असम और मणिपुर जैसे प्रदेशों से निकल रहे हैं और यह बात इन राज्य सरकारों को चुनौती के रूप में लेनी चाहिए। ऐसा नहीं कि इन राज्यों के पास प्रतिभाएं नहीं हैं। झारखंड ने क्रिकेट से इतर हॉकी, तीरंदाजी आदि खेल विधाओं में कई राष्ट्रीय सितारे दिए हैं। राज्य अगर खेल-संस्कृति को प्रोत्साहन दे, तो वहां से कई नए नाम देश को मिल सकते हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश को खेलों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। इसी कॉमनवेल्थ गेम्स में पैरा शॉटपुट में बिहार के सोमन राणा का स्वर्ण पदक इस बात का सुबूत है कि अगर सही तलाश की जाए, तो इन दोनों सूबों के पास ऐसे युवाओं की कोई कमी नहीं, जो वैश्विक खेल प्रतिस्पर्द्धाओं में देश-प्रदेश का नाम ऊंचा कर सकें। अगले राष्ट्रमंडल खेल अहमदाबाद में होने वाले हैं। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि हम 2010 कॉमनवेल्थ खेलों की पदक संख्या से आगे निकल सकें। फिलहाल देश अपनी उन बेटियों के स्वागत की तैयारी करे, जिन्होंने ग्लासगो में भारत का परचम बुलंद किया है।

Date: 03-08-26

बड़े काम के होंगे छोटे प्लास्टिक नोट

आलोक जोशी, (वरिष्ठ पत्रकार)

अब चलेंगे प्लास्टिक के नोट। केंद्र सरकार ने रिजर्व बैंक के प्रस्ताव को हरी झंडी दिखा दी है कि दस और बीस रुपये के सौ-सौ करोड़ प्लास्टिक के नोट छापे जाएं। इन नोटों के आने के साथ ही भारत की मुद्रा व्यवस्था में एक नए दौर की शुरुआत हो जाएगी।

हालांकि, यह नया विचार नहीं है। इस पर पहले से ही काम चल रहा है और 2010-12 के दौरान तो रिजर्व बैंक ने आंध्र प्रदेश, राजस्थान, ओडिशा, कर्नाटक, शिमला, कोच्चि, मैसूर, भुवनेश्वर और जयपुर सहित कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में दस रुपये के ऐसे नोटों को परीक्षण के तौर पर चलाकर भी देखा था। पता चला है कि तब कुछ शिकायतें मिली थीं। इनमें ज्यादा गर्मी से इन नोटों के सिकुड़ने या चिपकने की आशंका थी और एटीएम या नोट गिनने वाली मशीनों में इन नोटों के लिए जरूरी इंतजाम की कमी भी। नोटों की लागत भी एक समस्या लग रही थी। हालांकि, रिजर्व बैंक की तरफ से इस परीक्षण की कोई ऐसी रिपोर्ट या समस्याओं की सूची सामने नहीं आई। अब काफी अध्ययन और तैयारी के बाद बड़े पैमाने पर ट्रायल की योजना सामने रखी गई है।

यहां प्लास्टिक शब्द का इस्तेमाल भ्रामक हो सकता है, क्योंकि मुद्रा या खर्च के संदर्भ में प्लास्टिक का अर्थ अभी तक क्रेडिट कार्ड या डेबिट कार्ड जैसे भुगतान के तरीके ही माने जाते रहे हैं। यहां जिन करेंसी नोटों का जिक्र हो रहा है, वे रासायनिक तौर पर भी प्लास्टिक के नहीं, बल्कि एक खास किस्म के पॉलीप्रोपिलीन या पॉलिमर से बने नोट होते हैं, इसलिए इन्हें पॉलिमर नोट कहना बेहतर होगा। ये नोट बेहद उन्नत और बारीक तकनीक से तैयार होते हैं, जिसके कारण इनको बहुत मजबूत, सुरक्षित और टिकाऊ माना जाता है।

बहुत से देशों में ये नोट सफलतापूर्वक चल भी रहे हैं। इनमें भारत के पड़ोसी भूटान और मालदीव जैसे देश भी शामिल हैं। दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी अनेक ऐसे देश पॉलिमर नोटों का इस्तेमाल कर रहे हैं, जिनकी भौगोलिक परिस्थितियां, मौसम और पर्यावरण भारत जैसे हैं। असल में, नए पॉलिमर नोट पर विशेष कोटिंग होती है, जिससे ये आसानी से आपस में चिपकते नहीं हैं और इनकी सतह लंबे समय तक सुरक्षित रहती है।

इस दौरान बैंकिंग कारोबार में भी काफी तरक्की हो चुकी है और नए एटीएम, पैसा जमा करने वाली मशीनें, करेंसी गिनने व छांटनेवाली मशीनें भी पॉलिमर नोटों को पहचानने, गिनने और छांटने के काम कर सकती हैं। यानी, पिछले पायलट प्रोजेक्ट के सामने जो अड़चनें आईं, उनमें से ज्यादातर अब दूर हो चुकी हैं। जाहिर है, अगर भारत बड़े पैमाने पर इन नोटों को अपनाता है, तो फिर बैंकिंग सिस्टम के सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर में जरूरी बदलाव किए जाएंगे। हालांकि, उसके लिए वक्त है, क्योंकि अभी जो दस और बीस रुपये वाले नोट जारी होने हैं, वे एटीएम में नहीं डाले जाते।

पॉलिमर नोटों की सबसे बड़ी खासियत उनकी लंबी उम्र, यानी टिकाऊपन है। खासकर, छोटे नोट, जैसे दस और बीस रुपये वाले, क्योंकि बहुत ज्यादा इस्तेमाल होते हैं, इसलिए जल्दी फट जाते हैं, गंदे हो जाते हैं या फिर धूल, पसीने व नमी से खराब हो जाते हैं। इसीलिए भारत जैसे देश में दस-बीस रुपये के नोटों की औसत उम्र काफी कम हो जाती है। पॉलिमर नोट कागज के नोटों के मुकाबले ढाई से चार गुना ज्यादा समय तक चल सकते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि ये नोट अगर कुछ महंगे भी पड़ते हैं, तब भी सरकार और रिजर्व बैंक का खर्च आखिरकार कम हो जाएगा, क्योंकि नए नोट छापने की जरूरत धीरे-धीरे कम होने लगेगी।

पॉलिमर नोटों का एक और बड़ा फायदा है नकली नोटों से मुकाबला। अभी छोटे नोटों का परीक्षण है, जिसमें नकली नोटों की समस्या कम होती है, पर पॉलिमर नोटों में कुछ हिस्सा एकदम खिड़की की तरह पारदर्शी हो जाता है। इनमें काफी पेचीदा 'होलोग्राफिक इफेक्ट' इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इसके अलावा उन्नत किस्म की सुरक्षा के लिए ऑप्टिकल और दूसरे तत्व भी काफी आसानी से इस्तेमाल किए जा सकते हैं। ऐसे नोटों की नकल करना कागजी नोटों के मुकाबले काफी मुश्किल है और महंगा भी।

अब एक बड़ा सवाल उठता है कि पॉलिमर नोट अपनाना क्या पर्यावरण के साथ छल नहीं होगा? इसके दो अहम पहलू हैं। एक तो यह कि कागज के नोट भी पर्यावरण के लिए खास लाभदायक नहीं हैं। कागज के लिए पेड़ों की बलि देनी पड़ती है। दूसरे, पॉलिमर नोट क्योंकि लंबे समय तक चलते हैं, इसलिए अपेक्षाकृत कम नोट छापने से गुजारा हो जाएगा। पॉलिथीन के बेरोकटोक फैलाव जैसा डर भी नहीं है, क्योंकि नोट की कीमत इतनी होती है कि लोग इसे संभालकर ही रखेंगे। इनकी 'रीसाइक्लिंग' भी की जा सकती है। हालांकि, प्लास्टिक के इस्तेमाल से जुड़ी आशंकाएं बेबुनियाद नहीं हैं, मगर तमीज से इनका इस्तेमाल हो और रिजर्व बैंक इनकी रीसाइक्लिंग का पक्का इंतजाम करे, तो फिर पर्यावरण को होने वाला नुकसान शायद कागज के नोटों के मुकाबले कम हो सकता है।

सबसे पहले ऑस्ट्रेलिया ने सन् 1988 में पहला पूर्ण पॉलिमर नोट जारी किया था। उसका अनुभव काफी सफल माना जाता है। उसके बाद कनाडा, न्यूज़ीलैंड, सिंगापुर और ब्रिटेन जैसे देशों ने ही नहीं, बल्कि ब्रुनेई, वियतनाम, रोमानिया, नाइजीरिया, चिली, मैक्सिको, पापुआ न्यू गिनी और निकारागुआ ने भी आंशिक या पूरी तरह पॉलिमर नोट इस्तेमाल करने शुरू किए हैं। पड़ोसी देश भूटान, श्रीलंका, नेपाल और बांग्लादेश ही नहीं, पाकिस्तान भी इनको आजमाने की राह पर है।

पिछले वित्त वर्ष के आखिर में भारत में 41 लाख, 68 हजार करोड़ रुपये की मुद्रा प्रचलन में थी। अभी जो पॉलिमर नोट छापे जाने का प्रस्ताव है, उसमें कुल तीन हजार करोड़ रुपये के नोट छपेंगे। रिजर्व बैंक यह नहीं बताता है कि अलग-अलग मूल्य के नोटों को छापने पर उसका कितना खर्च होता है, लेकिन पिछले वित्त वर्ष में करेंसी नोट छापने पर कुल 4,875 करोड़ रुपये खर्च किए गए हैं। यहां एक सवाल यह भी उठता है कि कैशलेस लेन-देन को बढ़ावा देने की तमाम कोशिशों और इसमें मिली अपार सफलता के बाद भी नोटबंदी से अब तक करेंसी में करीब ढाई गुना बढ़त क्या कहती है?

जो भी हो, बदलती दुनिया और बदलते वक्त के साथ चलने के लिए जरूरी है कि भारत इस मोर्चे पर गंभीरता से विचार करे, ठोक-पीटकर परीक्षण करे और फिर चरणबद्ध तरीके से बदलाव पर काम करे। ऐसा हुआ, तो उम्मीद है कि जल्द ही पॉलिमर नोट आपकी अपनी जेब में भी होंगे।

Date: 03-08-26

जेन-अल्फा की शिकायतों से आंखें फेरना गलत होगा

क्षमा शर्मा, (वरिष्ठ पत्रकार)

देश में जेन-जी आंदोलन की आग अभी ठंडी भी नहीं हुई थी कि खबर आई कि जेन-अल्फा (2010-2024 तक जन्मे) के बच्चे अब मैदान में आ गए हैं। ये 21वीं सदी के सूचना-समाज के बच्चे हैं। दुनिया भर की खबरें मोबाइल, टीवी के जरिये देखते हैं। इनके बारे में अब मजाक किया जाने लगा है कि ये तो मोबाइल हाथ में ही लेकर पैदा हुए हैं। जेन-जी के आंदोलन से इन्हें लगा कि वह शासन को झुका सकती है, तो हम क्यों नहीं? इसीलिए सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे अब आंदोलन करने लगे हैं।

उत्तर प्रदेश के फतेहपुर में एक सरकारी इंटर कॉलेज की कक्षा छह से लेकर 12 तक के करीब 1,500 बच्चे अपने संस्थान के सामने धरने पर बैठ गए। उनकी यह शिकायत थी कि कॉलेज में उन्हें मामूली सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं। बच्चों की मांग थी कि बिजली रहे, टूटे पंखे ठीक किए जाएं। स्वच्छ शौचालय की व्यवस्था हो। कक्षा के लिए पर्याप्त कमरे हों। पीने को साफ पानी मिले। खेल सुविधाएं हों। कॉलेज प्रशासन ने उनकी मांगों को मान लिया। इसमें उसे छह घंटे लगे। कॉलेज प्रशासन का कहना है कि कुछ बड़े बच्चों ने, जो हालिया जेन-जी आंदोलन में शामिल हुए थे, इसे शुरू किया।

जालौर और बाड़मेर, राजस्थान में भी स्कूली बच्चों ने विरोध-प्रदर्शन किए। जालौर में उन्होंने स्कूल गेट पर ताला जड़ दिया। उनकी शिकायत थी कि प्राइमरी कक्षाओं में अध्यापकों की कमी है। बाड़मेर के बच्चों की भी यही मांग थी। उनका कहना

था कि न जाने कब से कई विषयों के अध्यापकों के पद खाली पड़े हैं, इसलिए उनकी ढंग से पढ़ाई ही नहीं हो पा रही। इन प्रदर्शनों में बड़ी संख्या में लड़कियों ने भी भाग लिया। सरकार ने बच्चों की मांगों पर ध्यान देते हुए 80 स्कूलों में, जहां अध्यापकों की कमी थी, फौरन अध्यापक नियुक्त किए।

बिहार के गया में एक स्कूल के दर्जनों बच्चे एसडीएम के दफ्तर तक बाकायदा जुलूस लेकर निकल पड़े। वे स्कूल में चापाकल खराब होने, शौचालय की साफ-सफाई और विद्यालय में खेल के उपकरणों की कमी की शिकायत लेकर पहुंचे थे। एसडीएम ने स्कूल के प्रधानाचार्य से बात की और निर्देश दिया कि पांच दिनों में बच्चों की सारी मांगें पूरी की जाएं। कर्नाटक में बच्चों ने चार घंटे तक राजमार्ग को जाम कर दिया था, क्योंकि वहां सरकारी बसें उनके गांव के बस स्टॉप पर न रुककर, कहीं दूर रुका करती थीं, जिससे वे स्कूल नहीं जा पाते थे।

ध्यान से देखें, तो बच्चे जिन सुविधाओं के लिए आंदोलित हैं, वे उन्हें मिलनी ही चाहिए। आखिर वे क्यों नहीं उन्हें मिलतीं? यदि स्कूलों में साफ पानी, पर्याप्त कक्ष, खेलने के मैदान व उपकरण व अध्यापक ही नहीं होंगे, तो वे क्या करेंगे? स्कूल प्रशासन व अधिकारी तब तक ध्यान क्यों नहीं देते, जब तक कि शिकायत न हो या बच्चे अपना गुस्सा प्रदर्शित न करने लगें?

अक्सर यह शिकायत की जाती है कि सरकारी स्कूल बंद हो रहे हैं, उनमें बच्चे आते ही नहीं। जाएं भी तो कैसे, यदि उनमें बुनियादी सुविधाएं तक उपलब्ध नहीं? सरकारी स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा सस्ती है, हालांकि उनमें पढ़ाने वाले नियमित अध्यापक-अध्यापिकाओं के वेतन ठीकठाक हैं। इनके मुकाबले निजी स्कूलों में शिक्षा महंगी है, पर शिक्षक-शिक्षिकाओं के वेतन सरकारी स्कूलों से कम है। विडंबना देखिए, जहां वेतन ज्यादा है, वहां से शिक्षकों की शिकायतें आती रहती हैं कि उनमें से कई स्कूल ही नहीं आते, अपने दायित्व को 'आउटसोर्स' कर देते हैं या जो विषय वे पढ़ाने आए हैं, वही उन्हें नहीं आता। निजी स्कूलों में ऐसा संभव नहीं है। सरकार को सोचना चाहिए कि अध्यापकों की भर्ती करते समय वह योग्यता की बहुस्तरीय परख करे, ताकि शिक्षक अपने विषय तो पढ़ा सकें। समय पर स्कूल आ सकें।

गौर करने की बात है कि जेन-अल्फा के बच्चे उस उम्र के हैं, जहां 'एडवेंचर' बहुत भाता है। मान लीजिए, धरना-प्रदर्शन करते ये कुछ ऐसा कर बैठें, जिससे इनकी जान को खतरा पैदा हो जाए अथवा किसी और को नुकसान पहुंचे, तब क्या होगा? इन दिनों राजनीति के बड़े खिलाड़ी इन्हें भड़का रहे हैं और इन्हें भी औरों की तरह उकसा रहे हैं कि वे सड़क पर आ जाएं। इसलिए इन नौनिहालों को स्कूल के अहाते में पढ़ने के लिए माकूल सुविधाएं मुहैया कराना बहुत जरूरी है।